इस्लाम में औरतों का दर्जा

क़िस्त-4

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः डॉ० आरिफ़ अब्बास

आख़िरी क़िस्त

(5)

दुश्मनाने इस्लाम की हमेशा ये कोशिश रही है कि इस्लाम के ख़िलाफ़ झूठा प्रोपगण्डा करके दो मक़सद हासिल करें (1) जो इस्लाम से दूर हैं, उन्हें दूर रखा जाए और वह इस्लाम के क़रीब न आने पाएं (2) कमज़ोर अक़ीदे के मुसलमानों को इस्लाम से बदज़न कर दिया जाए और इस्लाम के ख़िलाफ़ उनके दिलो दिमाग़ में शुकूको शुबहात पैदा कर दिए जाएं। जिस तरह से शैतान ने हज़रत आदम और हज़रत हव्वा को बहका लिया था और उनका जन्नती लिबास उतरवा दिया था उसी तरह से ये शैतान के नुमाइन्दे चाहते हैं कि मशिरक़ी दुनिया की पाक सिफ़त और नेक सरशत बच्चियों और ख़वातीन को ममनूआ फल खाने पर आमादा कर लें, ताकि नजाबतो शराफ़त का लिबास (हिजाब) उनके जिस्म से उतर जाए और उन्हें इज़्ज़त और करामत और बुलन्द किरदारी के आसमानों से खींच कर बेशर्मी, बेहयाई और बेइज़्ज़ती के दलदलों में ले आएं।

क़ुरआन मजीद ने ख़वातीन को इज़्ज़तो शराफ़त की मेराज पर पहुँचाया है। किताबे इलाही में एलान हो रहा है (मफ़हूम) ''और अल्लाह ही ने तुमको ख़ाक से पैदा किया, फिर नुतफ़ा में बनाया और फिर तुम्हारे जोड़े बनाए (सूर-ए-फ़ातिरः 11) आयत से ये नतीजा निकलता है कि इन्सान एक कुल और एक इकाई का नाम है, जिसके दो जुज़ हैं: औरत और मर्द यानी औरत+मर्द=इन्सान। लेहाज़ा अब ये सवाल ही नहीं उठता कि कौन पस्त है और कौन बलन्द, कौन अहम है और कौन ग़ैर अहम। जिस तरह से एक ही सिक्के के दो रुख़ होते हैं कि सिक्का उन दोनों के बग़ैर मुकम्मल नहीं होता या जिस तरह दिन और रात जब मिलते हैं तो ज़माने की तशकील होती है। फैसला नहीं हो सकता कि दिन ज़्यादा अहम है या रात, जिस तरह से जब मुस्बत और मनफ़ी तार मिलते हैं तो नूर पैदा होता है और फ़ैसला नहीं किया जा सकता कि कौन सा तार ज़्यादा अहम है। इसी तरह से इन्सानियत की तशकील दो जुज़ों से मिलकर होती है एक का नाम है मर्द और एक का नाम है औरत। औरत अगर कमज़ोर और नाज़ुक है तो ये नक़्स नहीं है। अगर मर्द क़वी और मज़बूत है तो ये उसकी बरतरी की दलील नहीं है, बल्कि दुनियाए इन्सानियत का हुस्न इस तज़ाद में है। अगर कोई मोतरिज़ हो तो ये ऐसा ही है जैसे कोई एतेराज़ करे कि जिस्म में आँखें नाज़ुक क्यों हैं? और हाथ पैर मज़बूत क्यों हैं? हाथ पैरों को भी आँखों की तरह नाज़ुक होना चाहिए था या आँख को भी पैरों की तरह मज़बूत होना चाहिए था, तब इन्साफ़ के तक़ाज़े पूरे होते मगर हर साहेबे अक़्लो नज़र कहेगा कि आँखों का हुस्न उसकी नज़ाकत में और हाथ पैरों की ख़ूबसूरती उनकी सख़्ती और मज़बूती में है। यहाँ हर बराबरी ज़ुल्म और नाबराबरी ऐन इन्साफ है, जिस तरह दरख़्तों की टहनियाँ फूल और पत्ते नर्म व नाज़ुक और हसीन होते हैं, जबकि तने और जड़ें सख़्त और खुरदुरी होती हैं, क्योंकि अगर ऐसा न हो तो दरख़्त का वजूद ही बाक़ी न रहे। इसी तरह दुनियाए इन्सानियत में औरत नर्म, लतीफ़ और नाज़ुक है और मर्द सख़्त व क़वी

क्योंकि इन्सानी समाज का वजूद इन्हीं मुतज़ाद हयात पर मुनहसिर है।

गुज़श्ता मज़मून में साबित किया गया कि ईसाईयों और यहूदियों की मज़हबी किताबों में जिनमे तहरीफ़शुदा तौरेत व इन्जील भी शामिल हैं, औरतों को पस्त तरीन मक़ाम पर रखा गया है। कोई कह सकता है कि मज़हब की बात छोड़िये ये देखिये कि यूरोपी समाज ने औरतों को बेहतरीन इज़्ज़त और मक़ाम दिया है और सारे हुक़ूक़ दिये हैं। इस पहलू पर भी गुज़श्ता किसी मज़मून में गुफ़्तगू हो चुकी है कि यूरोप में उन्नीसवीं सदी में सनअती तरक़्क़ी शुरु हुई और कसरत से कारख़ाने क़ायम हुए तब सरमायादारों ने नक़ली रिफ़ारमरों के ज़रिए औरतों की आज़ादी का नारा बलन्द किया। हक़ीक़त जानने के लिए यूरोप ही के एक मुफ़क्किर वेल डोरेन्ट के चन्द जुमले मुलाहेज़ा कीजिऐ, ''मसीहियत से ज़्यादा क़दीम आदात व रुसूम में अचानक तबदीली कैसे आ गई? इसकी इल्लत हम क्या बयान करें? हम यही कहेंगे कि इसकी उमूमी इल्लत मशीनों की कसरत थी। औरतों की आज़ादी यूरोप की सनअती इन्क़ेलाब की पैदावार है। इंगलैड की पार्लिमेण्ट में 1883ई० में पहली मरतबा ये क़ानून पास हुआ कि औरतों को हक़्क़े मिलकियत हासिल है और अपना कमाया हुआ पैसा अपने नाम से रख सकती हैं। ये बज़ाहिर बहुत आली और अरफ़ा ख़ातून पार्लिमेण्ट के उन मेम्बरों ने पास करवाया था जो बड़े-बड़े कारख़ानों के मालिक थे और मक़सद था इंगलिस्तान की औरतों को कारख़ानों में खींच लाया जाए। ये कारख़ानादारों की नफ़ा की लालच थी जिसने औरतों को एक गुलामी और बेचारगी से आज़ाद करवाकर कारख़ानों, दुकानों और जनरल स्टोरों की बदतर गुलामी और जाँगुदाज़ मशक़्क़त में फंसा दिया।'' वेल डोरेन्ट के बयान से मालूम हुआ कि 1882ई० में पहली मरतबा ख़वातीन को यूरोप में हक़्क़े मिलकियत हासिल हुआ। इसी तरह जर्मन में 1900ई० में औरतों को हक़्क़े मिलकियत हासिल हुआ। सुइज़रलैण्ड में 1907ई० में और इटली में 1919ई० में, लेकिन पुर्तगाल और फ्रांस में अभी तक ख़वातीन अपने पूरे हुक़ूक़ से महरूम हैं, लेकिन क़ुरआन मजीद ने आज से चौदह सौ बरस पहले औरतों को हक़्क़े मिलकियत अता कर दिया था (मफ़हूम) ''मर्दों के लिए वह हिस्सा है जो उन्होंने कमाया है और औरतों के लिए वह हिस्सा है जो उन्होंने हासिल किया है।'' (सूर-ए-निसाः 32)

इस्लामी क़वानीन न औरत की जानिबदारी करते हैं और न मर्द की, बल्कि दोनों की फ़ितरी और तबई ज़रूरियात के मुताबिक़ क़ानून बनाया गया है ताकि इस्लामी समाज अपने ख़ालिक़ और रब की हिदायात के ज़ेरे साया सआदत और नेक बख़्ती की मेराज पर पहुँच सके। आपने मुलाहेज़ा कर लिया होगा कि जो हुक़ूक़ यूरोप ने सौ बरस पहले दिए वह इस्लाम चौदह सौ बरस पहले दे चुका है। वह भी यूरोप वालों की तरह इक़्तेसादी फ़ायदा हासिल करने के लिए नहीं, बल्कि शराफ़ते इन्सानी की हिफ़ाज़त और अद्लो इन्साफ़ के तक़ाज़ों को पूरा करने के लिए। यूरोप ने औरतों को हक़ दिया, मगर साथ ही साथ ख़ानदानी निज़ाम को तबाह व बर्बाद कर दिया, मगर इस्लाम ने ख़ानदानी रिश्तों को मज़बूत करते हुए औरत और मर्द के हुक़ूक़ मुअय्यन फ़रमाए। यूरोप ने हक़ देने का ढिंढोरा तो पीटा, मगर एक ज़ंजीर औरत की गर्दन से उतार कर दूसरी ज़ंजीर डाल दी और उसे अपनी फ़ितरत से बग़ावत पर आमादा कर दिया, मगर इस्लाम ने औरतों को तो उनका हक़ भी दिया, लेकिन उनकी इज़्ज़त व हुरमत और उनकी शख़सियत और फ़ितरी पहचान को महफ़ूज़ रखते हुए।

इस्लाम के ख़िलाफ़ अहमक़ाना प्रोपगण्डा किया जाता है कि यहाँ औरत और मर्द के हुक़ूक़ बराबर नहीं हैं। मेरे ख़याल में अगर दिक़्क़ते नज़र से काम लिया जाए तो मसावात हर जगह मुताबिक़े अद्ल नहीं होती, बल्कि कभी तो मसावात और बराबरी की कोशिश ज़ुल्म बन जाती है। इस तरह तफ़ावुत और नाबराबरी हर जगह ज़ुल्म नहीं होती, बल्कि ऐन अद्ल बन जाती है। फूल लतीफ़ और नाज़ुक होते हैं, शाखें मज़बूत और सख़्त होती हैं। अगर शाखें मज़बूत न हों तो फूल अपने हुस्न की नुमाइश नहीं कर पाएंगे और अगर फूल और फल अपनी फ़ितरी सिफ़ात खो दें तो शाख़ें अपने वजूद

का इज़हार नहीं कर पाएंगी। दूसरे लफ़्ज़ों में फूल दरख़्त की ज़िन्दगी की अलामत हैं और मज़बूत शाख़ें और दरख़्त फूलों के हुस्न के मुहाफ़िज़ हैं। यहाँ भी अगर हम मसावात और बराबरी का दम भरें तो इससे बड़ी बदअक़्ली और क्या होगी। औरतों की आज़ादी का झूठा नारा देने वालों की कोशिश है कि औरतों की शबीह बन जाएं। ये बात बज़ाते ख़ुद सिन्फ़े निस्वाँ की तौहीन है। इसका मतलब ये निकलेगा कि औरत होना बाइसे ज़िल्लत है। औरतें मर्दों के बराबर आ जाएं ऐसा नारा देने वाले नादानिस्ता साबित कर रहे हैं कि मर्दों की ज़ात बलन्द है और औरतें पस्त हैं, औरतें मर्दों जैसी बनें ताकि बराबरी पैदा हो। ये तो ऐसा ही है कि फूल तमन्ना करें कि अपना हुस्न और नज़ाकत खोकर शाख़ों और जड़ों जैसे खुरदुरे और मज़बूत बन जाएं या शाख़ें तमन्ना करें कि फूलों और कलियों जैसी नज़ाकत हासिल कर लें ताकि मसावात और बराबरी हो जाए। ऐसी मसावात से ख़ुद दरख़्त का वजूद ख़त्म हो जाएगा।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 2 जुलाई 2010ई०)

(6)

इस से पहले के मज़मून में अदालत की बात आई थी। अदालत के दो मानी बयान किए गए हैं (1)किसी चीज़ को उसके मुनासिब मक़ाम पर रखना, (2)हर हक़दार को उनका हक़ देने का नाम अदालत है। यहाँ पर इन्तेहाई अहम और नाज़ुक पहलू ये है कि जिस चीज़ को हक़ समझा जा रहा है और बतौर हक़ पहचाना जा रहा है उसका क़वानीने फ़ितरत के मुताबिक़ होना ज़रूरी है, जिस चीज़ को हक़ समझा जा रहा है, अगर वह फ़ितरी क़वानीन से टकरा रहा है तो समाज में फ़ितना और फ़साद पैदा हो जाएगा और वही हक़ मुख़ालिफ़े अदालत हो जाएगा। चाहे इन्फ़ेरादी रवैय्या हो या इज्तेमाई क़ानून उसका अल्लाह तआला की बनाई हुई फ़ितरत के मुताबिक़ होना ज़रूरी है।

इन्सान का बनाया हुआ जो भी क़ानून फ़ितरत से टकराएगा उसका नतीजा सिवाए तबाही और बरबादी के कुछ न होगा। पूरी कायनात में एक हमआहंग क़ानून जारी व सारी है और इसी कायनात का एक छोटा सा जुज़ इन्सान भी है। किताबे फ़ितरत के बिखरे हुए औराक़ ख़ुद इन्सानों का दर्स दे रहे हैं। एक छोटा सा परिन्दा 'बया' अपनी नन्हीं सी चोंच में एक छोटा सा तिनका लेकर आता है और अपनी मादा और बच्चों के लिए इन्तेहाई हसीन और मज़बूत आशियाना तैयार करता है। परिन्दों का मुताला करने वाले माहिरीन का अन्दाज़ा है कि ये नन्नहा सा परिन्दा तक़रीबन पचास हज़ार बार उड़ता है तब जाकर ये घर तैयार होता है जो हर लेहाज़ से महफ़ूज़ होता है। किताबे फ़ितरत ख़ुद दर्स दे रही है कि मर्द का काम है घर बनाए, ज़िन्दगी के लवाज़िम फ़राहम करे, घर से बाहर मेहनतो मशक़्क़त करे और औरत का काम घर के अन्दर का है। मशहूर मुफ़क्किर वेल डोरेण्ट ने लिखा है "जंगों और मशीनों में हम इतना डूब गए हैं कि इस हक़ीक़त को चेक नहीं कर पा रहे हैं कि ज़िन्दगी की असासी वाक़िईयत न सनअत है और न सियासत। ये असासी वाक़िईयत इन्सानों के बाहमी ख़ुशगवार ताल्लुक़ात ख़ास तौर से माँ-बाप, मियाँ-बीवी और औलादों की आपसी हम आहंगी और हमदर्दी है।

आज मैं चाहता हूँ कि चन्द हदीसें पेश हों, जिनसे अन्दाज़ा होगा कि इस्लाम में मर्दो से ज़्यादा औरतों के लिए ताकीद है। पैग़म्बरे अकरमस० ने फ़रमायाः अगर कोई मर्द किसी महरम औरत की मुश्किल को हल करे और उसका दिल ख़ुश करे तो अल्लाह तआला उस मर्द की दुश्वारियों को रोज़े क़यामत आसान कर देगा। (उसूले काफ़ी, बाब फ़ज़्लुल बनात)

एक शख़्स रसूलुल्लाहस० की ख़िदमत में बैठा हुआ था कि ख़बर मिली कि उसकी बीवी के यहाँ लड़की पैदा हुई है। उस शख़्स के चेहरे का रंग बदल गया। रसूले अकरमस० ने फ़रमायाः तुझे क्या हो गया है, ज़मीन उसका बोझ उठाएगी, आसमान उस पर अपना साया करेगा, अल्लाह उसे रोज़ी अता फ़रमाएगा। एक फूल है जो तुझे क़ुदरत ने अता फ़रमाया है। दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया कि जो कोई तीन बेटियों या तीन बहनों की किफ़ालत करे उस पर जन्नत वाजिब है। किसी ने पूछा अगर दो हों? आपने फ़रमाया अगर दो

भी हों। पूछा अगर एक हो? फ़रमाया अगर एक भी हो (यानी तब भी जन्नत वाजिब है)। (उसूले काफ़ी, किताबुन्निकाह)

रसूलुल्लाह[स०] ने फ़रमाया तुम्हारी बेहतरीन औलादें तुम्हारी बेटियाँ हैं। (वसाएलुश्शीआ, जिल्द-15 पेज-615) रसूलुल्लाह[स०] से पूछा गया कि औरतों का हक़ मर्दों पर क्या है? फ़रमाया कि जिब्रील ने औरतों के सिलसिले में इतनी बार मुझ से सिफ़ारिश की कि मुझे गुमान होने लगा कि कहीं उफ़ करना भी मना न हो जाए। (मुस्तदरकुल वसाएल, जिल्द-2 पेज-551) इमाम सादिक़[अ०] ने फ़रमायाः बेटियाँ नेकियाँ हैं और बेटे नेमत हैं। नेकियों के बदले में सवाब है और नेमतों के लिए हिसाबो किताब है।

ऊपर दी हुई अहादीस से अन्दाज़ा होगा कि इस्लाम सिन्फ़े ख़्वातीन पर कितना मेहरबान है कि अगर माँ-बाप लड़कियों की सही तरीक़े से किफ़ालत और तरबियत करें तो उन पर जन्नत वाजिब हो जाएगी। ऐसी कोई हदीस लड़कों के सिलसिले में नहीं मिलती। इमाम सादिक़[अ०] ने फ़रमाया कि जन्नत में अक्सरियत कमज़ोर ख़्वातीन की होगी, अल्लाह उनकी कमज़ोरी और सिन्फ़ की वजह से उन पर रहम फ़रमाएगा। इसी तरह आप देखेंगे कि बाप से ज़्यादा माँ के लिए ताकीद है। एक शख़्स रसूलुल्लाह[स०] के पास आया और कहा कि मेरी माँ बूढ़ी हो चुकी है, मेरे पास रहती है। मैं उसको अपनी पुश्त पर सवार करता हूँ, अपनी रोज़ी से खिलाता हूँ, उसके हर राहत व आराम का ख़याल रखता हूँ इसके बाद भी शर्मिन्दगी से उसकी तरफ़ निगाह नहीं करता हूँ। क्या मैंने माँ का हक़ अदा कर दिया? रसूलुल्लाह ने फ़रमायाः नहीं हरगिज़ नहीं। उसका पेट तुम्हारे लिए ज़र्फ़ था। उसका सीना तुम्हारी रोज़ी का सबब था। उसके पैर तुम्हारी जूतियों की जगह थे। उसके हाथ बलाओं के लिए सिपर थे, उसका दामन तुम्हारा गहवारा था। तुम्हारी माँ सिर्फ़ तुम्हारी ख़ातिर ये ज़हमतें बर्दाश्त करती थी और तुम्हारी ज़िन्दगी की दुआएं माँगती थी। तुम माँ की ख़िदमत तो कर रहे हो, मगर दिल में उसकी मौत के आरज़ूमन्द हो। रसूलुल्लाह[स०] ने अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हात में तीन चीज़ों के लिए सिफ़ारिश फ़रमाई (1) नमाज़ (2) ख़्वातीन (3) गुलामों के साथ नेक बरताव।

एक शख़्स रसूलुल्लाह[स०] की ख़िदमत में आया और पूछा किसके साथ नेकी करूँ। फ़रमाया अपनी माँ के साथ नेकी करो। उसने पूछा इसके बाद किसके साथ नेकी करूँ। फ़रमाया अपनी माँ के साथ नेक सुलूक करो। उसने फिर पूछा उसके बाद? फ़रमाया माँ के साथ। चौथी मरतबा फ़रमाया बाप के साथ नेक सुलूक करो। इमाम रिज़ा[अ०] ने फ़रमाया कि माँ का हक़ सबसे ज़्यादा लाज़िम और सबसे अहम वाजिब है, क्योंकि उसने 9 महीने तुम्हारा बोझ उठाया। कोई दूसरे का बोझ चन्द लम्हे ख़ुशी से नहीं उठाता, मगर उसने तुम्हारा बोझ हंसी ख़ुशी बर्दाश्त किया। वह दुश्वारियाँ बर्दाश्त कीं कि दूसरा उनके बर्दाश्त करने पर क़ादिर नहीं है। वह इस बात पर राज़ी रही कि ख़ुद भूकी रहे, मगर उसका बच्चा सैर रहे। ख़ुद प्यासी रहे, मगर बच्चा सैराब हो जाए। ख़ुद उरयाँ रह जाए, मगर औलाद को पूरा लिबास मिले, ख़ुद धूप में रहे, मगर बच्चा साए में रहे। हक़ तो ये है कि औलाद भी उनके साथ ऐसा ही नेक सुलूक करे, मगर औलाद के लिए इस एहसान का जवाब मुमकिन नहीं, मगर ये कि अल्लाह उसकी मदद फ़रमाए।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 16 जुलाई 2010[ई०])

(7)

गुज़श्ता मज़मून में अर्ज़ किया गया कि सरमायादारों ने औरतों की आज़ादी का नारा बलन्द किया और उनको हक़ दिलाने का प्रोपगण्डा भी किया, लेकिन मक़सद अपने कारख़ानों में सस्ते मज़दूरों की भर्ती थी। आज़ादी के झूटे नारों से मुतास्सिर होकर औरतें घरों से बाहर निकलीं, जिसके नतीजे में फ़ैमिली लाइफ़ और ख़ानदानी निज़ाम बिखर गया। सरमायादाराना ज़हनियत ख़ानवादों की तश्कील की मुख़ालेफ़त है, क्योंकि इसकी तरक़्क़ी का इन्हेसार ही इस बात पर है कि निज़ामे ख़ानवादा कि तारोपोद बिखर जाएं और आपसी मुहब्बत के रिश्ते टूट जाएं। उन्हें ऐसे मज़दूर चाहिए कि उनके कारख़ानों के लिए वक़्फ़ हो जाएं और सारे रिश्ते

तोड़कर सिर्फ़ उन्हीं के बनकर रहें। इसी फ़िक्र ने इन्सानी समाज को बेअन्दाज़ा नुक़सानात पहुँचाए हैं और इन्सान मशीन का पुरज़ा होकर रह गया। ये ख़ानदानी निज़ाम है जिसमें इन्सानी सिफ़ात परवरिश पाती हैं। मुहब्बत, रिआयत, आपस में एक-दूसरे की मदद, हमदर्दी, अफ़ोदरगुज़र, ईसार और क़ुर्बानी और दूसरी सिफ़तें जो इन्सानी समाज के बुनियादी अनासिर हैं, वह ख़ानवादा और घरेलू ज़िन्दगी ही में पैदा होते हैं और वहीं रुश्दो नुमु भी हासिल करते हैं। ख़ानदानी निज़ाम ही के ज़रिए अख़लाक़ी और फ़िक्री मीरास और ख़ानदारी शराफ़तें और फ़ज़ीलतें आइन्दा नसलों में मुन्तक़िल होती हैं।

एक बुज़ुर्ग ने बड़ी दिलचस्प बात कही कि औरतों की आज़ादी के नारे औरतों की तरफ़ से कम बलन्द होते हैं मर्दों की तरफ़ से ज़्यादा। ख़ुद औरतों को देखना चाहिए कि इस मुतालबे में कहीं मर्दों की ख़ुदग़र्ज़ी तो शामिल नहीं जिस पर उन्होंने हमदर्दी का नक़ाब डाल दिया है। पर्दे के ख़िलाफ़ मुहिम और औरतों को घर की चारदीवारी से बाहर निकालने का मुतालबा कहीं ऐसा तो नहीं है कि जैसे शहर के सारे चोर और डाकू मिलकर एहतेजाज करें कि लोग रातों को अपने घरों के दरवाज़े बन्द करके क्यों सोते हैं जिसकी वजह से उन्हें डाके डालने में दिक़्क़त होती है। ख़वातीन के लिए इस बात का जानना बहुत ज़रूरी है कि आज़ादी के मुतालबों में औरतों से हमदर्दी का जज़्बा कम है, मर्दों की ख़ुदग़र्ज़ी ज़्यादा है।

इस्लामी निज़ाम में नाइन्साफ़ी का शाएबा तक नहीं। इस्लामी क़वानीन उसके बनाए हुए हैं जो ख़ालिक़ भी है, रब भी है और अरहमर राहिमीन भी। जिसको जितनी ज़रूरत है और जिसमें जितनी फ़ितरी सलाहियत है उतना हक़ उसे दिया गया है, क्योंकि फ़ितरत का ख़ालिक़ भी वही है और क़ानूने शरीअत का बनाने वाला भी वही है। इसकी मिसाल इस तरह से दी जा सकती है कि दुनिया से रुख़सत होते हुए बाप चाहता है कि अपनी सारी जायदाद औलाद में बांट दे। उसके पास खेती के लिए ज़मीन भी है, दुकान भी है और कारख़ाना भी। दुकान, ज़मीन और कारख़ाने की क़ीमत बराबर-बराबर है। समझदार और तजुर्बेकार बाप ये देखेगा कि कौन औलाद कौन सी जायदाद बेहतर तरीक़े से संभाल सकती है तो जिसमें कारख़ाना चलाने की सलाहियत देखी उसे कारख़ाना दे दिया, जिसमें देखा खेती-बाड़ी का सलीक़ा पाया जाता है उस औलाद को खेती के लिए ज़मीन दे दी। जिसमें दुकानदारी की सलाहियत पाई उसे दुकान सुपुर्द कर दी। इस अमल को कौन नाइन्साफ़ी कहेगा? अगरचे तीनों चीज़ें अलग-अलग हैं, मगर क़ीमत और अहमियत बराबर है और फ़ितरी सलाहियत के मुताबिक़ तक़सीम की गई हैं। इसी तरह इन्सानी ज़िन्दगी के दो पहलू हैं। एक बाहरी ज़िन्दगी और एक घरेलू ज़िन्दगी। फ़ितरी सलाहियतों के मुताबिक़ मर्द को बाहरी ज़िन्दगी की ज़िम्मेदारी सौंप दी गई और औरतों को घर की मलका का दर्जा अता कर दिया, ताकि दोनों मिलकर इन्सानी समाज की तश्कील करें।

जब ये कहा गया कि औरत का अव्वलीन फ़रीज़ा और अहम तरीन ड्यूटी बहैसियत माँ के है तो बड़ी वावेला मचाई गई, लेकिन इस हक़ीक़त से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि औरत के ज़हन और जिस्म को क़ुदरत की तरफ़ से ऐसे सांचे में ढाला गया है जो सिर्फ़ माँ के लिए मुनासिब है। जिस्मानी साख़्त के सिलसिले में एक दलील देना चाहता हूँ, जो नाक़ाबिले इन्कार है। मर्दों और औरतों के हाथों की हड्डियों के जोड़ में फ़र्क़ है। मर्दों के हाथों की हड्डियाँ इस तरह जुड़ी होती हैं कि वह ज़मीन से भारी वज़न अपने सर से ऊँचा उठा सकता है, लेकिन ख़वातीन के हाथों की हड्डियों की साख़्त ऐसी है कि वह हाथों को मोड़कर वज़न देर तक संभाल सकती हैं। तजुर्बे से साबित है कि अगर किसी ताक़वर मर्द को छोटा सा बच्चा दे दिया जाए तो ताक़तवर होने के बावजूद जल्द ही थक जाएगा, मगर एक धान-पान सी औरत किसी बच्चे को दिनभर गोद में लिए रहती है, मगर थकन का एहसास नहीं होता, क्योंकि उसके हाथों की साख़्त ही ऐसी है कि वज़न को गोद में देर तक संभाल सकती है। इससे नतीजा निकलता है कि औरत की ख़िलक़त का अहमतरीन

मक़सद एक बेहतरीन माँ बनना है। काश ये पैग़ाम उन ख़्वातीन तक पहुँच जाए जो सियासी लीडर बनने के लिए बेताब हैं कि अच्छी माँ बनने का फ़न फ़रमांरवाई और लीडरी के फ़न से ज़्यादा दुश्वार भी है और अहम भी।

चूँकि इस मौज़ू पर आख़िरी मज़मून है लेहाज़ा मैं चाहता हूँ कि शरीअते इस्लामिया ने ख़्वातीन को जो हुक़ूक़ अता फ़रमाए हैं उनमें से चन्द इख़्तेसार के साथ बयान हो जाएं, मगर ये मद्देनज़र रहे कि मैं जो भी अर्ज़ करूँगा वह फ़िक़्हे जाफ़री के मुताबिक़ है।

(1) मर्द, बीवी को घर के काम करने पर मजबूर नहीं कर सकता। देखा गया है कि दफ़्तर से शौहरे नामदार तशरीफ़ लाते ही खाने का मुतालबा करते हैं। अगर तैयार न हो तो बीवी को ज़बरदस्त डांट खानी पड़ती है और जब नोश फ़रमाने बैठते हैं तो कभी मिर्च ज़्यादा होने पर प्लेट उछाल दी तो कभी नमक ज़्यादा होने पर पतीली उलट दी। ऐसे मर्दों को मालूम होना चाहिए कि वह रोब जमाकर बीवी से काम नहीं ले सकते। अगर बीवी इन्कार कर दे तो ख़ादिमा रखना वाजिब है और अगर ख़ादिमा रखने की इस्तेताअत नहीं तो बावर्चीख़ाने में तशरीफ़ ले जाएं, चूल्हा जलाएं, पतीली चढ़ाएं और बीवी से पूछें आज क्या पसन्द फ़रमाएंगी। जब बीवी खाना नोश कर लें तो बर्तन धोएं। अगर घर में कूड़ा है तो झाड़ू उठाएं..... वग़ैरा-वग़ैरा। अगर घर के काम की उजरत बीवी माँगे तो देनी होगी।

(2) इस्लाम पर इल्ज़ाम लगाया जाता है कि मर्द को तलाक़ का हक़ है, लेकिन औरत को नहीं, मगर तलाक़े ख़ुला के ज़रिए औरत किसी भी नामुनासिब शौहर से छुटकारा हासिल कर सकती है। इसी तरह वक़्ते अक़्द, तलाक़ की वकालत शौहर से हासिल कर सकती है और कभी भी उस हक़ को इस्तेमाल करके अपने ज़ालिम और नाक़ाबिले क़ुबूल शौहर से नजात हासिल कर सकती है।

(3) अक़्द के वक़्त शर्त कर सकती है कि मेरे बीवी रहने तक शौहर दूसरा अक़्द करने का हक़ इस्तेमाल नहीं करेगा। अगर शौहर दूसरा अक़्द करे तो शर्त की ख़िलाफ़वर्ज़ी की बुनियाद पर तलाक़ का मुतालबा कर सकती है।

(4) आज अदालतें फ़ख़्रिया कहती हैं कि हमने मुसलमान औरतों को हक़ दिलाया और तलाक़ के बाद भी नानो नफ़क़ा पिछले शौहर पर लाज़िम कर दिया। हालांकि ये हक़, शरीअत औरत को पहले ही दे चुकी है। अक़्द के वक़्त शर्त कर सकती है कि अगर शौहर ने बिला वजह तलाक़ दी तो औरत के दूसरा अक़्द करने तक नानो नफ़क़ा देता रहेगा, लेकिन ये तमाम शरायत अक़्द के वक़्त होना चाहिएं।

(5) औरत दूध पिलाने की उजरत शौहर से ले सकती है। वमा अलैना इल-लल-बलाग़

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 13 अगस्त 2010ई०)